SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

बूढ़ी काकी तथा छप्पन तोले की करधन कहानियों में अभिव्यक्त वृद्ध विमर्श का तुलनात्मक अध्ययन

गरिमा पाण्डेय, जे.आर.एफ. शोधार्थी, **आलोक मिश्र,** पी.–एचडी., शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग
स्वामी शुकदेवानन्द कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
संबद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
गरिमा पाण्डेय, जे.आर.एफ. शोधार्थी
आलोक मिश्र, पी.–एचडी., शोध निर्देशक
E-mail : garimapandey57@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 12/06/2025
Revised on : 13/08/2025
Accepted on : 22/08/2025
Overall Similarity : 00% on 14/08/2025

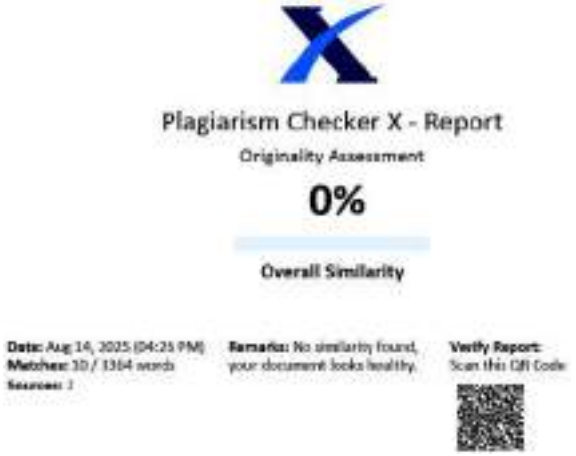

शोध सार

विकसित और आधुनिक बनने की प्रक्रिया में मनुष्य अपने परंपरागत मूल्यों और संस्कारों को खो रहा है। आज मानव वृद्ध होकर प्राकृतिक मृत्यु प्राप्त करने की अपेक्षा वृद्धावस्था के कष्टों से बचने के लिए इच्छामृत्यु की कामना करने लगा है। वृद्धावस्था के कारण उपजे ये कष्ट न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक भी हैं। वृद्ध होते ही परिवार के बाकी सदस्यों के व्यवहार में उनके प्रति आए परिवर्तन मनुष्य को वृद्ध होने से डरा रहे हैं। शून्य होती संवेदनाओं और पारिवारिक संबंधों में खत्म होते विश्वास ने मनुष्य को अकेला और निस्सहाय कर दिया है। जो भारतीय समाज बूढ़ी हो चुकी गाय को भी उसकी मृत्युपर्यंत अपने पास रखता था, आज वही भारतीय समाज बूढ़े हो चुके मां–बाप को वृद्धाश्रमों में छोड़ दे रहा है। उपयोगितावाद के दौर में मनुष्य ने उन संबंधों और व्यक्तियों को ही महत्व देना शुरू कर दिया है जिनकी उसके जीवन में कहीं न कहीं उपयोगिता हो। मानव मूल्यों में आए इस नवीन परिवर्तन ने हमारे बड़े–बूढ़ों के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इस शोध पत्र में वृद्ध विमर्श के दृष्टिकोण से प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' और उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले की करधन' का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों कहानियों के प्रकाशन में साठ वर्ष का अंतर होते हुए भी दोनों कहानियों में कई बिंदुओं पर समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन करना इस शोध पत्र का ध्येय है।

मुख्य शब्द

प्रेमचंद, उदयप्रकाश, वृद्धविमर्श, आधुनिकता, परिवार, समाज.

'न सा सभा यत्र न संति वृद्धाः' हितोपदेश से उद्धृत ये पंक्तियां भारतीय समाज में वृद्धों की उपयोगिता और उनके महत्व का अंकन करने के लिए पर्याप्त हैं लेकिन आधुनिकता की आंधी और पश्चिमी संस्कृति के तूफान ने भारतीय मूल्यों की जड़ों को हिला दिया। जो वृद्धजन कल तक सम्माननीय थे वही आज अनुपयोगी हो गए। लेकिन कुछ प्रश्न उठते हैं कि क्या वृद्धावस्था और उससे जुड़ी समस्याएं आधुनिकता की ही देन है? क्या प्राचीनकाल में या मध्यकाल में लोग बूढ़े नहीं होते थे? वास्तविकता यह है कि लोग तब भी बूढ़े होते थे। वृद्धावस्था से उपजे शारीरिक मानसिक कष्ट मनुष्य को तब भी विचलित करते थे लेकिन वर्तमान में यह विषय विमर्श का रूप धारण करके हमारे सम्मुख उपस्थित है,क्योंकि जिस भयावह रूप में वृद्धावस्था को अभिशाप मानकर आज की पीढ़ी देख रही है, उस पर विचार और विमर्श की आवश्यकता है। वृद्ध विमर्श के अर्थ पर विचार करते हुए चंद्रमौलेश्वर प्रसाद लिखते है, ''बुढ़ापा आने का अर्थ ही है व्यक्ति का केंद्र से उखाड़ कर परिधि की ओर जाने के लिए विवश होना। केंद्र से अपदस्थ होते ही व्यक्ति समाज की उपेक्षा का पात्र बन जाता है, और यदि उसका सही पुनर्वास न हो तो उसे अपना अस्तित्व ही अभिशाप लगने लगता है। इस प्रकार परिधि पर धकेले गए एक समुदाय के रूप में वृद्ध समुदाय दुनिया का बहुत बड़ा उपेक्षित जन समुदाय है, जिसकी जनसंख्या में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तीव्रता से वृद्धि हुई है और 21वीं शताब्दी में और भी वृद्धि सुनिश्चित है क्योंकि इधर जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही घट रही हैं तथा चिकित्सा विज्ञान ने आदमी की औसत आयु बढ़ा दी है। वृद्धावस्था विमर्श इस उपेक्षित समुदाय की दृष्टि से अथवा वृद्धावस्था को केंद्र में रखते हुए समाज, साहित्य और संस्कृति की नई व्याख्या करने वाला विमर्श है।''[1]

हिंदी साहित्य की नवीनतम विधाओं में से एक होते हुए भी हिंदी कहानी ने जिस सार्थकता के साथ हमारे समाज की मूल संवेदनाओं और समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है, वह शायद ही किसी अन्य साहित्यिक विधा ने की हो। हिंदी कहानी की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से होती है। 1915 आते आते प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य में अपना पदार्पण कर चुके थे। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानियों को एक नई दिशा प्रदान की। अपने समय में हो रहे पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन को उन्होंने ने न सिर्फ देखा बल्कि अपने साहित्य में उसे अभिव्यक्त भी किया। राजेंद्र यादव अपनी आलोचनात्मक कृति 'एक दुनियाः समानांतर' में लिखते हैं ,"परिवार का परंपरागत ढांचा प्रेमचंद के समय में ही टूट गया था और परिवार की परिभाषा वह नहीं रह गई थी जो अभी तक समझी जाती थी। फैमिली या परिवार की सीमा आज पति,पत्नी और बच्चे ही है,उसमें भाई–बहन, भाभी, जीजा, बाबा इत्यादि रिश्तेदार नहीं आते है। इस बात को समझने के लिए भारतीय व्यक्ति को जिन–जिन भीषण यातनाओं से गुजरना पड़ा है वे आज अविश्वसनीय लगती है। संयुक्त परिवार की ऐतिहासिक आवश्यकता समाप्त हो चुकी है, स्वयं प्रेमचंद को यह समझने में कम समय नहीं लगा।"[2] प्रेमचंद ने अपने समय की समस्याओं पर तो कलम चलाई ही, साथ ही साथ भावी समय के साहित्य और समाज की नब्ज भी पकड़ी थी। उनकी कहानियों में नारी विमर्श से लेकर उत्तर आधुनिक विमर्श जैसे दलित विमर्श और वृद्ध विमर्श की प्रारंभिक छाया भी दिखाई देती है। उनकी कहानी 'बूढ़ी काकी' वृद्ध विमर्श पर लिखी गई श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। 'बूढ़ी काकी' कहानी में परिवार की आवश्यकता और उसकी अर्थहीनता दोनों का समावेश है। एक भरे पूरे संयुक्त परिवार में उस वृद्धा को जिस मानसिक प्रताड़ना से गुजरना पड़ता है, उसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन इस कहानी में देखने की मिलता है।

उदय प्रकाश समकालीन हिंदी कहानी लेखकों में बड़ा नाम है। वे 'तिरिछ' और 'वारेनहेस्टिंग्स का सांड' जैसी कहानियों के लिए जाने जाते हैं। उनकी कहानियां अपने समय और समाज का वास्तविक स्वरूप बिना किसी लाग लपेट के प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानी 'छप्पन तोले की करधन' पारिवारिक मूल्यों के क्षरण,वृद्धों के प्रति समाप्त होते सम्मान और शून्य होती मानवीय संवेदनाओं की कहानी है। इस शोध पत्र में 'बूढ़ी काकी' और 'छप्पन तोले की करधन' कहानियों का वृद्ध विमर्श के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

'बूढ़ी काकी' कहानी में काकी अपने बेटों की मृत्यु उपरांत अपनी सारी संपत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम कर देती हैं। संपत्ति लिखाते समय किए गए लंबे–चौड़े वायदे संपत्ति के लिख जाने के बाद झूठे साबित होते हैं। जीवित रहने के लिए भोजन जैसी जैविक आवश्यकता पर भी पति–पत्नी दोनों को आपत्ति होने लगती है। जहां काकी को उनका भतीजा और बहू मिलकर अपमानित करते हैं, वहीं दूसरी ओर परिवार के बच्चे भी बड़ों की

देखा–देखी उन्हें हंसी ठिठोली का सामान समझकर उनके प्रति असंवेदनशील रवैया अपनाते हैं। पोते के तिलक में बन रहे पकवानों की सुगंध से और कुछ क्षुधावश जब बूढ़ी काकी अपनी कोठरी से बाहर निकल आती है तो सबसे पहले बहु रूपा से और दूसरी बार भतीजे बुद्धिराम से अपमानित होती है। वो ठान लेती है कि अब जब तक कोई खाने के लिए नहीं बुलाएगा वे नहीं जाएंगी। लेकिन पेट की आग से विवश वृद्धा अंत में जूठी पत्तलों से पूड़ियाँ खाती है। अपनी चाची सास को इस अवस्था में देखकर बहू रूपा को पश्चाताप होता है। उसे अपनी भूल का अहसास होता है। अंत में वह उन्हें सादर भोजन कराती है।

उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले की करधन' में स्थितियां और अधिक भयानक हैं। उदय प्रकाश की कहानी में दादी के बेटा बहू से लेकर उनकी बेटी तक करधन के लालच में उन्हें प्रताड़ित करते हैं। दादी के पास करधन थी भी या नहीं, यह बात कहानी के अंत तक नहीं पता चलती है लेकिन करधन को प्राप्त करने के लिए परिवार के अन्य सदस्य जिस प्रकार का अमानवीय व्यवहार उस वृद्धा के साथ करते हैं, वह पाठक को विचलित कर देता है। अखबारों में आए दिन हम पढ़ते है कि किसी वृद्ध की हत्या उसके ही परिवार के सदस्य ने धन संपत्ति के लालच में कर दी। कहानी में भी घर की माली हालत सुधारने की लालसा में सभी सदस्य उस वृद्धा को डराते,धमकाते और कई कई दिनों तक भूखा रखते हैं। जब उन्हें दस्त आने लगते है तो उनकी साफ सफाई और देख–रेख की अपेक्षा छोटी बहू घृणावश उन पर चार–पांच बाल्टी पानी डाल देती है। गीले कपड़े बदले बिना ही उन्हें कोठरी में छोड़ दिया जाता है जिसके बाद दादी की मृत्यु हो जाती है।

'बूढ़ी काकी' और 'छप्पन तोले की करधन' दोनों कहानियां बीसवीं शताब्दी की है। पहली बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर की कहानी और दूसरी 80 के दशक की। दोनों कहानियों का परिवेश ग्रामीण है। सामान्यतः पाया जाता है कि एकल परिवार में वृद्धजन अधिक दयनीय स्थिति में हैं किंतु इन दोनों ही कहानियों के वृद्ध पात्र एक भरे पूरे परिवार में रहते हुए भी उपेक्षा और घृणा के शिकार है। 'बूढ़ी काकी' में काकी अपनी सारी संपत्ति अपने एक मात्र भतीजे बुद्धिराम के नाम करके भी भरपेट भोजन को तरसती हैं,"उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था। बेटे तरुण हो–होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजे ने सारी सम्पत्ति लिखाते समय खूब लम्बे–चौड़े वादे किए, किन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्जबाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़–दो सौ रुपए से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी को पेट–भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था।"[3]

वहीं दूसरी ओर 'छप्पन तोले की करधन' कहानी 1984 में प्रकाशित हुई। 'छप्पन तोले की करधन' कहानी की दादी अपनी बची खुची संपत्ति सोने की करधन न देकर परिवार के सदस्यों द्वारा अपमानित और प्रताड़ित की जाती हैं। "दादी दिन–भर में सिर्फ एक बार खाना खाती थीं। जस्ते का एक बहुत पुराना, तुचका–पुचका भगौना था, उसी में दाल–भात, चटनी, सूखी मिर्च डाल दी जाती और अम्माँ उसे अँधियारी कोठरी की ड्योढ़ी पर रख आती थीं। कई–कई बार तो कई दिनों तक हर रोज भगौना ज्यों–का–त्यों भरा हुआ लौट आता, फिर उस खाने को कोई नहीं खाता था।"[4] कहानी में घर के सभी सदस्यों को पता था कि दादी चावल नहीं खाती थी लेकिन बहुओं और बेटी द्वारा बेचारी वृद्धा को रोज खाने में चावल ही परोसे जाते थे।

जीव वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर किए गए शोधों से ये बात सिद्ध हुई है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की आयु अधिक होती है। महिलाओं को पुरुषों से अधिक लंबा जीवन प्राप्त होता है और इस लंबे जीवन में बुढ़ापे का आगमन होना स्वाभाविक है। बूढ़ी काकी और छप्पन तोले की करधन दोनों कहानियों के वृद्ध पात्र स्त्री हैं। इन्हीं दोनों पात्रों के इर्द–गिर्द कहानी का ताना–बाना बुना गया है। काकी और दादी दोनों पात्रों की शारीरिक अवस्था लगभग एक सी है। 'बूढ़ीकाकी' की वृद्ध पात्र काकी में स्वादेन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य कोई इंद्री इतनी प्रबल नहीं है। आंखे,हाथ,पैर आदि सभी अंग शिथिल पड़ चुके थे। वे हाथों के बल सरक कर चलती हैं लेकिन भोजन जैसी जैविक जरूरत अभी भी उन्हें है। यदि भोजन उन्हें समय से नहीं मिलता था तो वे बच्चों जैसा व्यवहार करने लगती थी,"बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा–स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष

न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहीं और घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता, अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और न मिलती तो वे रोने लगती थीं। उनका रोना–सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़–फाड़कर रोती थीं।"[5]

'छप्पन तोले की करधन' कहानी की पात्र दादी की अवस्था भी काकी जैसी ही है। अस्सी वर्ष के आस–पास उनकी आयु हो चुकी है। परिवार के सदस्यों की लापरवाही और रोज होते दुर्व्यवहार ने उनकी अवस्था को और अधिक दयनीय बना दिया था। वृद्ध होना जीवन में उतना ही स्वाभाविक है जितना कि बालक का युवा होना लेकिन वृद्धावस्था में अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक देखरेख और स्नेह की आवश्यकता होती है। परिवार के सदस्यों के प्रेम और सहयोग से हम वृद्धावस्था को रोक तो नहीं सकते किन्तु उस अवस्था में जीवन को सरल और सहज अवश्य बना सकते हैं, परन्तु यदि उचित सहयोग और देख रख न मिले तो यही अवस्था अत्यधिक कष्टकारी हो जाती है। दादी के साथ भी यही होता है। उनकी शारीरिक अवस्था का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है ,"दादी किसी बूढ़े गिद्ध की तरह दिखायी देतीं, जिसके सिर और गर्दन के सारे रोएँ झड़ जाते हैं और एक पतली, बीमार, झुर्रियों भरी गर्दन और नंगी खोपड़ी वहाँ बचती है। इस खोपड़ी के भीतर का दिमाग अपने अन्तिम समय की सारी आवाजों को धीरे–धीरे सुनता रहता है।"[6] दादी का शरीर भले ही जर्जर हो चुका था लेकिन सोचने समझने की शक्ति अब भी उनमें शेष थी। उन्हें पता था कि सोने का करधन न मिलने पर परिवार वालों का व्यवहार उनके प्रति इतना निर्दयता पूर्ण है और यदि करधन मिल गया तो स्थितियां और भी भयानक हो सकती हैं। वे अपनी शंका अपने पुत्र से व्यक्त करते हुए कहती हैं, ".....दादी रोने लगी थीं, फिर कहा था– अभी तो बेटा बहू दाल–भात ड्योढी पर रख जाती है, करधन मैंने दे दिया तो फिर कौन–सी आस रह जायेगी? करधन हो कि न हो वह मेरे लिए और तुम सबकी आस के लिए जरूरी है बेटा।"[7] वास्तव में करधन था कि नहीं यह किसी को मालूम नहीं चलता लेकिन उस करधन के बहाने ही सही दादी परिवार के सदस्यों के लिए महत्वपूर्ण थी। उनका जीवित रहना आवश्यक हो गया था, बल्कि उनको जीवित रखना आवश्यक हो गया था।

उपरोक्त दोनों कहानियों में वृद्धजनों के रहने का स्थान एक कोठरी है। वास्तव में यह कोठरियां वृद्धों को घर के मुख्य भाग से हटाकर किनारे ले जाने का प्रतीक प्रतीत होती हैं, जहां वे परिवार के सदस्यों की नजरों से परे, गांव–समाज की नजरों से दूर रहते हैं। भोजन के लिए अपने भतीजे बुद्धिराम से अपमानित हो काकी को ऐसी ही कोठरी में छोड़ दिया जाता है और फिर पूरा गांव और समाज भोजन करके चला जाता है लेकिन बुद्धिराम और रूपा दोनों को ही काकी याद भी नहीं रहती है।

'छप्पन तोले की करधन' कहानी में भी दादी कोठरी में ही रहती हैं। दादी को अपनी नैसर्गिक क्रियाएं भी कोठरी के एक कोने में करनी पड़ती है। जिस प्रकार घर के मुख्य भाग और आंगन में रखे अवांछित सामान को हटा कर कहीं कोने रख दिया जाता है वैसे ही दादी को भी उनकी कोठरी में उनके हालात पर परिवार के सदस्यों ने छोड़ रखा था। सोने की करधन के अतिरिक्त उनसे किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं होने वाला था शायद इसीलिए. .., "हम सब दादी को अक्सर भूल जाते थे और कभी–कभी तो महीनों उन्हें नहीं देखते थे। न वे हमारी आँखों के सामने कहीं होतीं, न हमारी स्मृति में उनका कोई अस्तित्त्व रहता। जिस कोठरी में दादी शीशम की एक पुरानी खाट पर सोती रहती थीं. उस कोठरी का नाम 'अँधियारी कोठरी' रख दिया गया था। वह एक बहुत छोटा, सँकरा और जमीन में धँसा हुआ अँधेरा 'कमरा था, जिसमें एक भी खिड़की नहीं थी। सिर्फ एक छोटा–सा दरवाजा था, जिसकी चौखट इतनी नीची थी कि लगभग बैठकर उस दरवाजे से कमरे में उतरना पड़ता था। कमरे का फर्श जमीन की सतह से कम–से–कम डेढ़ बीता नीचे था। वहाँ हमेशा अँधेरा होता था, दिन में भी। दादी कई दिनों बाद या कभी–कभी कई महीनों बाद उस कमरे से बाहर निकलती थी।"[8]

प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' के अंत में हम पाते है कि रूपा अपनी वृद्धा सास के प्रति अपने व्यवहार को लेकर ग्लानि प्रकट करती है। रूपा उन्हें जब जूठी पत्तलों से पूड़ियाँ बीनकर खाते हुए देखती है तो वह पाप और

अधर्म के भय से विचलित होती है। उसका भोजन की थाल सजाकर काकी के पास जाना और उनसे क्षमा माँगना, काकी का भोले–भाले बच्चों की भाँति सब कुछ भूलकर भोजन करने में तत्पर हो जाना, कहानी को एक आदर्शवादी अंत प्रदान करता है। रूपा का पछतावा और काकी की तृप्ति प्रेमचंद के आदर्शवादी यथार्थ की उपज है। प्रेमचंद की कहानियों में पूर्वांचल के गांवों की सामाजिक और नैतिक व्यवस्था की झलकियां देखी जा सकती हैं। जिस समय वे कहानियां लिख रहे थे उस समय व्यक्ति किसी न किसी रूप में गांव और समाज से जुड़ा हुआ था। यही गांव और समाज का भय शायद काकी की दशा दुर्दशा को कहानी के अंत तक भी अमानवीयता के उस स्तर तक नहीं ले जाता जहां से 'छप्पन तोले की करधन' कहानी का आरंभ होता है। जब दोनों कहानियों को वृद्ध विमर्श की दृष्टिकोण से देखा जाता है तो हम पाते हैं कि वृद्धों को लेकर संवेदनहीनता दोनों कहानियों में है लेकिन पश्चिमी संस्कृति के आगमन से और भूमंडलीकरण के दौर में यह संवेदनहीनता और अधिक व्यापक और भयावह हुई है। प्रेम, स्नेह, दया, करुणा जैसे भाव खोखले शब्द बनकर रह गए। उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' में आज के समाज की नग्न तस्वीर का चित्रण हुआ हैं। आज का समाज वृद्धों के प्रति संवेदनहीन बनता जा रहा है। धन और संपत्ति का लालच मनुष्य को मां और बेटे के घनिष्ठ संबंध के प्रति भी गैर जिम्मेदार और संवेदना शून्य बना रहा है। बेटे और बहू अपनी बूढी माँ से करधन प्राप्त करने के लिए अमानवीयता की किसी भी हद तक जाने को तैयार है..., "कहते हैं, चाची ने दादी को बीमारी में भी बहुत डराया धमकाया। छुरा चमकाती रहीं, दादी का गला दबाया और नाक और मुँह बन्द करके उनकी साँस भी देर तक रोकी। साँस रुकने से दादी का शरीर गुब्बारे की तरह फूल गया, लेकिन उन्होंने तब भी नहीं बताया कि करधन कहाँ है। एक बार एक महीने तक दादी को अन्न का एक दाना भी नहीं दिया गया।"[9]

अतः बूढ़ी काकी कहानी में लोक–परलोक, धर्म–अधर्म गांव–समाज आदि का भय तो है लेकिन 'छप्पन तोले की करधन' कहानी में पारिवारिक मूल्यों के क्षरण के साथ–साथ मानवीय मूल्यों के उत्तरोत्तर ह्रास का यथार्थवादी चित्रण मिलता है जहां दुनिया, समाज, लोक, परलोक किसी प्रकार का भय नहीं है।

निष्कर्ष

आधुनिकता और बाजारवाद की अंधी दौड़ में मनुष्य ने बहुत कुछ खोया है। अर्थ प्रधान होते समाज में मानव अपने परिवार के प्रति निभाए जाने वाले नैतिक दायित्वों को भी भूल चुका है। प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' वृद्धावस्था के मनोविज्ञान का चित्रण करने में सफल है। लेखक ने वृद्धावस्था के कारण आए मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को बड़ी ही मार्मिकता और संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है। हमारे समाज में कहावत है कि बच्चा और बूढ़ा एक समान होते है। दोनों को अति स्नेह और सहानुभूति की आवश्यकता होती है। बूढों का स्वभाव भी बालकों जैसा हो जाता है। काकी के स्वभाव में भी ये परिवर्तन दिखाई देते हैं। मन की चीज न मिलने पर उनका व्याकुल और विचलित हो जाना, बच्चों द्वारा सताए और छेड़े जाने पर रो देना, रूपा और बुद्धिराम की डांट फटकार से आहत होना, जरा सा स्नेह मिलने पर सब कुछ भुला देना और भोजन के लिए उसी उत्साह से उपस्थित होना। ये सभी घटनाएं वृद्ध मनोविज्ञान का अति सूक्ष्म अंकन करती है। दूसरी ओर 'छप्पन तोले की करधन' कहानी में वृद्धों के व्यवहार और मनोविज्ञान के साथ साथ परिवार के सदस्यों द्वारा वृद्धों के प्रति किए गए व्यवहार का वर्णन मिलता है। 'छप्पन तोले की करधन' कहानी में धन और संपत्ति का लालच अपने ही परिवार के लोगों को एक असहाय और असमर्थ वृद्धा के प्रति असंवेदनशील और क्रूर बना देता है। सोने की करधन प्राप्त करने के लिए दादी के साथ अनेक तरह की ज्यादतियां की जाती है। महीनों उन्हें भूखा रखा जाता है, डराया धमकाया जाता है, खाने के नाम पर एक वक्त चावल दाल और कभी–कभी तो उस चावल दाल में मिट्टी मिलाकर परोसी जाती। दोनों कहानियों में अपने समय और परिवेश के अनुकूल परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में निरंतर क्षरण और अपनों से बड़ों के प्रति हम किस सीमा तक असंवेदनशील हो रहे है इसका अंकन दोनों कहानियों में हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि दोनों ही कहानियां वृद्ध विमर्श के दृष्टिकोण से सार्थक कहानियां हैं।

संदर्भ सूची

1. प्रसाद, चंद्रमौलेश्वर (2016) *वृद्धावस्था विमर्श,* परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, पृ. 10।
2. सं. यादव, राजेंद्र, (2018) *समानांतरः एक दुनिया,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 26।
3. प्रेमचंद (2002) *मानसरोवर,* भाग 8, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पृ. 102।
4. प्रकाश, उदय (2020) *तिरिछ,* वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 54।
5. प्रेमचंद (2002) *मानसरोवर,* भाग 8, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पृ. 102।
6. प्रकाश, उदय, (2020) *तिरिछ,* वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 56।
7. वही, पृ. 62।
8. वही, पृ. 50—51।
9. वही, पृ. 63।

****